

आधुनिकता के आइनें में दलित अवमानना के आयाम



रुचि सिंह

प्रवक्ता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
एस.एस.डी.पी.सी. गल्स डिग्री
कॉलेज, रुड़की, हरिद्वार

सारांश

अवमानना की धारणा में किसी सृजनात्मकता की तलाश वैसे तो काफी अस्थिकर है लेकिन एक स्तर पर अवमानना अपने शिकार को एक ऐसी आत्म-परिभाषा अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है जो इतिहास में से निकलती है और जिसकी रचना बजरिये भाषा, रूपक और क्रियाशीलता के औजारों से होती है। ये संदर्भ कुछ नये अर्थों का सृजन करते हैं जिनसे अवमानना के शिकार न केवल यह जान पाते हैं कि वे क्या हैं बल्कि उन्हें यह भी एहसास होता है कि वे क्या नहीं हैं। ये नये अर्थ प्रतिरोध के लिए उत्पीड़ित की शक्ति के साथ-साथ उसके ऊपर लगाये गये प्रतिबंधों अर्थात् उत्पीड़क द्वारा स्थापित प्रबल वर्चस्व की समझ पैदा करते हैं। अवमानना का यह सृजनात्मक पहलू दलितों के कल्पनाजगत में प्रतिरोध के अंक के रूप में मौजूद रहता है।

दलित साहित्य के कुछ विद्वानों न भी अवमानना की अवधारणा का सृजनात्मक तात्पर्य निकालने की चेष्टा की है। दलित साहित्य के एक परोद्धा बाबूराव बागुल ने अपनी मशहूर कहानी मरन सस्ता होता है, में अवमानना को एक ऐसी चेतना के रूप में परिभाषित किया है जिसकी धार तलवार के समान होती है। बागुल अछूत जैसे बेहद अवमाननाकारी शब्द को एक बगावती तेवर दे कर ऊँची जातियों द्वारा अपनायी जाने वाली पवित्रता-अपवित्रता की धारणाओं को चुनौती देते नजर आते हैं। काफी प्रभावशाली रूपकों की मदद से वे अछूत की तुलना उस प्रखर सूर्य से करते हैं जिसे कोई छू नहीं सकता। दक्षिण भारत के कुछ दलित व्याख्याताओं ने भी अछूत को विजली के नंगे तार की संज्ञा दी है जिसे छूना घातक हो सकता है। इन दोनों मिसालों में अवमानना की सृजनात्मक धारणा दलितों के प्रखर सौंदर्यशास्त्र के रूप में उभरती है। इसी जगह सवाल उठता है कि अवमानना का यह सृजनात्मक पहलू किसी तरह के विरचित भाव से तो प्रभावित नहीं है।

मुख्य शब्द : अवमानना, दलित, उत्पीड़ित, जातिगत, अराजकतावादी, अस्पृष्टता, हृदयविदारक

प्रस्तावना

अवमानना को समझने में उदारवादी और मार्क्सवादी, दोनों नजरिये ही नाकाम रहे हैं। नित्य प्रति अवमानना के दौर से गुजरने वाले दलितों और महिलाओं के लिये अवमानना उनकी आत्म परिभाषा में बदल जाती है जिसके जरिये वे जान पाते हैं कि वे क्या हैं और क्या नहीं हैं। अवमानना उत्पीड़ित की शक्ति बन जाती है। गांव से लेकर शहर तक और खेत से लेकर कारखानों तक दलितों की अवमानना का यह क्रम लोकतान्त्रिक-उदारवादी राज्य में कानूनी रूप से प्रतिबन्धित होते हुये भी परिवर्तित रूपों में जारी रहता है। दफ्तर में काम वाले वाला दलित ही नहीं, अछूत सम्प्रदाय से आया हुआ मुख्यमंत्री भी पाता है कि लोकतंत्र और सत्ता में ऊँचे स्तर पर भागीदारी करने के बाद भी उसके लिये मानवीय सम्बन्धों की साहिता अभी बदली नहीं है। अपमान की कूटभाषा का जन्म हो चुका है और समस्या यह है कि अभिजन बन चुके दलित भी अपने सजातीय बन्धुओं के लिये इसी भाषा का इस्तेमाल करते हुये देखे जाते हैं।¹

भारतीय बुद्धि अपमान करने की नयी-नयी किस्मों के ईजाद में खास तौर से माहिर है इस समाज में युक्ति के लिये किये जाने वाले संघर्षों को हर कदम पर अवमानना के विभिन्न रूपों और तरीकों का सामना करना पड़ता है। समस्या यह है कि उदारतावादी विन्तन के दायरे में गरिमा और परस्पर सम्मान के सवाल को या तो केवल विधिसम्मत निजी अधिकारों के सन्दर्भ में समझा गया है या फिर उसे एक मनोवैज्ञानिक परिषट्टना की संज्ञा दी गयी है।² दूसरी तरफ मार्क्सवादी दृष्टि भी आत्म सम्मान और गरिमा के मसले पर यह दृष्टि अपर्याप्त साबित होती रही है।³ चूंकि सामाजिक सम्बन्ध जातिगत ऊँच-नीच से बुरी तरह प्रभावित है इसलिए भारत में किसी भी मानवाधिकार आन्दोलन के लिये जाति उत्पीड़न का विरोध करना एक अनिवार्य प्रस्थान बिन्दु माना जाता है।⁴ इस सम्बन्ध में यह उल्लेख करना जरूरी है कि मार्क्सवादी दायरों में कुछ ऐसे

E: ISSN NO.: 2349-980X
संवेदनशील विद्वानों और कार्यकर्ताओं का तबका भी है जो गरिमा अथवा अवमानना की उपेक्षित श्रेणियों पर ध्यान देने की कोशिश करते रहे हैं।⁵ मानवाधिकार सम्बन्धी विमर्श के इस मोड़ पर कुछ दलित बहुजन विद्वानों ने भी जाति के यथार्थ पर एक नया परिप्रेक्ष्य प्रस्तावित करने की पहल की है।⁶

उद्देश्य

- जातिगत ऊँच—नीच से बुरी तरह प्रभावित सामाजिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालना ।
 - नित्य प्रति अवमानना के दौर से गुजरने वाले दलितों की स्थिति से अवगत कराना ।
 - प्रत्येक जाति का परम्परा के आधार पर जाति का निर्धारण करना एवम् उचित अथवा अनुचित पर प्रकाश डालना ।
 - आधुनिक काल में दलितों द्वारा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने के कारणों को जानना ।

अवमानना का तात्पर्य

अवमानना की विभिन्न अवधारणायें प्रचलित हैं। अविशाई मार्गलिट की रचना "डीसेंट सोसाइटी" में अवमानना के कई अर्थ सामने आते हैं। अराजकतावादी नजरिये से अवमानना को देखते हुए वे तरक देते हैं कि किसी भी तरह के प्राधिकार या कृपा-भाव के प्रति अधीनता अवमानना का पर्याय होती है⁷। इस धारणा के मुताबिक कृपालु होने के किसी भी रूप या कोशिश को अवमानना समझा जाना चाहिए। इस परिभाषा के तहत आत्म-सम्मान का प्रश्न भारी महत्व ग्रेन कर लेता है। अधिकार और अवमानना के बीच सूत्रों की स्थापना करते हुये मार्गलिट का तर्क है कि अधिकारों की मांग करने की अक्षमता भी एक तरह की अवमानना है⁸। यह कटु सत्य है कि भारतीय समाज में जातिभेद है और समाज के वंचित वर्ग के साथ भेदभाव अभी पूरी तरह खत्म नहीं हो पाया है⁹। हमारे समाज में अनसूचित जाति के लोगों को अस्पृश्यता के नाम पर मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। इन लोगों पर सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक निर्योग्यतायें लाद दी गयी जिनके कारण इहें निम्न स्तर का जीवन बिताना पड़ा। परन्तु भारतीय संविधान निर्माताओं को इस समस्या का पूर्ण आभास था, इसलिए संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों में सामाजिक एवं आर्थिक विषमता से मुक्त समाज के निर्माण में समानता के अधिकार का विशिष्ट महत्व है¹⁰।

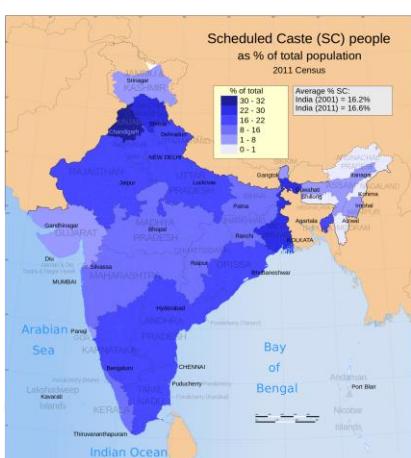
उ० प० में कष्ट अनुभवित जातियों का विवरण

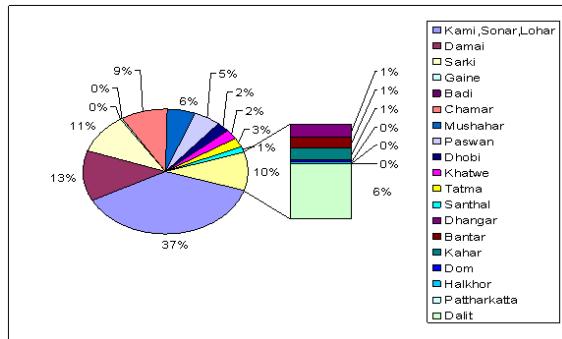
जाति	जनसंख्या	टन्सूचित जाति जनसंख्या का प्रतिशत
अहारिया	18,678	.05 प्रतिशत
बाधिक	11,142	.03 प्रतिशत
बढ़ई	11,721	.03 प्रतिशत
बेघा	26,476	.08 प्रतिशत
बाल्मीकि	11,66,383	3.3 प्रतिशत
बंगली	18,660	.05 प्रतिशत
बनमानस	18,730	.05 प्रतिशत
बंसफोर	57,025	.2 प्रतिशत
बारवार	13,326	.04 प्रतिशत
बवारिया	6,054	.02 प्रतिशत
भान्टू	8,184	.02 प्रतिशत
चमार	1,98,03,106	56 प्रतिशत
चेरो	32,405	.1 प्रतिशत
पासी	55,97,002	16 प्रतिशत
तुर्रहा	25,649	.08 प्रतिशत
डोमार	18,053	.05 प्रतिशत
हरी	1,719	.005 प्रतिशत
करवाल	16,264	.05 प्रतिशत
खैराहा	3,047	.008 प्रतिशत
नट	1,58,379	.05 प्रतिशत

स्रोतः— (www.censusindia.gov.in)

www.csosb.nic.in/abg.gov.in

लोकतान्त्रिक उदारतावादी राज्य से यह मांग वैधानिक रूप से की जा सकती है कि वह अपने राजतंत्र के हर व्यक्ति को समान आदर और अवसर मुहैया करायें, भले ही वह व्यक्ति अल्पसंख्यक समुदाय का हो या बहुसंख्यक समुदाय का। राज्य अपने प्राधिकार का विस्तार करते हुये अपने किसी भी सदस्य को पक्षणत या उत्पीड़न से बचाने के लिये सामाजिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। राज्य और उसकी संस्थागत ताकत के साथ-साथ आत्म सम्मान के लिये चलाये जाने वाले आन्दोलनों की कहीं अधिक महत्वपूर्ण उपस्थिति के कारण उत्पीड़क अवमानना के छिपे हुये रूपों का इस्तेमाल करने लगे हैं। उदा० साठ के दशक में आन्ध्र प्रदेश के दलित मुख्यमंत्री का अपमान करने के लिए ऊँची जाति के अफसर और मंत्री दहरे अर्थों वाली कटाक्षणपूर्ण भाषा का इस्तेमाल करते थे। दलित मुख्यमंत्री को वे अक्सर “M.M.” के नाम से सम्बोधित करते थे। मुख्यमंत्री के पूछने पर उनकी सफाई होती थी कि “एम एम” से उनका मतलब है “मिस्टर मिनिस्टर” जो चार्ल्स टेलर के मुताबिक अधिक गरिमामय संबोधन भी माना जा सकता था लेकिन इस “एम एम” का तेलगू भाषा में एक और अर्थ “मिस्टर माला” निकलता था। आन्ध्र प्रदेश की एक दलित जाति होती है। “एम एम” का एक अर्थ जारज सन्तान भी निकलता है। यह उदाहरण बताता है कि मानवीय सम्बन्धों की संहिता को बदलने के लिये किये जाने वाले प्रगतिकांकी प्रयासों को नाकाम करने के लिये कैसी-कैसी चालाकियों का इस्तेमाल किया जाता रहा है।





जहाँ—जहाँ निम्नवर्गीय आन्दोलन अवमाननाकारी हालात के खिलाफ संघर्षरत होता है, वहाँ—वहाँ उत्पीड़क व्यंग्य और कटाक्ष का इस्तेमाल करने का हथकंडा अपनाते हैं। तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में ऐसे कई उदाहरण देखे जा सकते हैं जिनमें उत्पीड़क दलितों की अवमानना के लिये अपमान की कूट भाषा का प्रयोग करते हुये पाये गये। ये उदाहरण अधिकतर शहरी स्थितियों में मिलते हैं क्योंकि वहाँ उत्पीड़कों को राज्य के हस्तक्षेप का खतरा रहता है।¹¹

पी० साईनाथ ने ग्रामीण इलाकों में दलित अवमानना के हृदयविदारक विवरण दिये हैं जिनसे पता चलता है कि गांवों में उत्पीड़क बिना किसी रोक-टोक के मनमानी कर सकते हैं। दिल्ली में राज्य की जोरदार और प्रभारी मौजूदगी के बावजूद मेडिकल कॉलेज के ऊँची जातियों के छात्र भगवा सरकार की छत्रछाया में दलित छात्रों का अपमान करते देखे गये हैं। एक मेडिकल कॉलेज में ऊँची जातियों के छात्रों ने दलित छात्रों को जूते में पानी भरकर पीने पर मजबूर किया। दलितों के लिये यह दुहरे अपमान का कारण था क्योंकि एक तो उन्हें गिलास के बजाय जूते से पानी पीना पड़ा और दूसरे परम्परागत रूप से चमड़ा गंदा और अपवित्र माना जाता है। ऊँची जातियों के छात्रों पर यह आरोप भी है कि उन्होंने दलित छात्रों के खाने की मेज एक कोने में छिसका दी और उसे दलित कोने का नाम दे दिया। इस तरह उन्होंने दलित छात्रों को ‘द्विज—मुख्यधारा’ से काटने की कोशिश की।

प्रायः प्रत्येक जाति कुछ पेशों को अपना परम्परागत पेशा मानती है और उसे छोड़ना उचित नहीं समझा जाता है। इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित के काम को और चमार जूते बनाने के काम को ही करना ठीक समझते हैं। साधारणतया: ऐसा भी होता है कि जाति प्रथा का नियम भी यही है। साथ—ही—साथ केवल जातियों का ही नहीं बल्कि उनके द्वारा किये जाने वाले पेशों में भी ऊँच—नीच होती है।¹² जिन पेशों को नीचा माना जाता है अपवित्र वस्तुओं में भी एक ऊँच—नीच का संस्तरण है। मलमूत्र सबसे अधिक अपवित्र है। इसी प्रकार चमड़े का काम और गन्दे कपड़े धोने का काम दो पृथक श्रेणियों के व्यक्तियों का होता है। इनके विपरीत धर्म से सम्बन्धित समस्त कार्य परम पवित्र माने जाते हैं और यही कारण है कि इन कार्यों को करने वाले ब्राह्मणों की स्थिति जातीय संस्तरण में “सर्वमान्य रूप में” सबसे ऊपर है। इस प्रकार पेशों की उच्चता और निम्नता तथा उनके चुनाव के सम्बन्ध में जाति के कुछ निश्चित नियम होते हैं। फिर भी कुछ पेशों ऐसे हैं जिन्हें प्रत्येक जाति के

सदस्य चुन सकते हैं। जैसे खेती, व्यापार, सेना की नौकरी आदि। न केवल जाति के व्यक्ति भी अपनी जाति के व्यक्तियों को अन्य पेशों को चुनने से रोकती है, अपितु अन्य जाति के व्यक्ति भी अनेक प्रकार से रोकने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् पेशा सम्बन्धी प्रतिबन्ध दिन—प्रतिदिन दुर्बल ही होता गया और जैसा कि थेस्स का कथन है, ‘जाति का पेशा परम्परागत होता है परन्तु यह किसी भी अर्थ में आवश्यक नहीं है कि उसी के द्वारा सब या अधिकतर जातियाँ आज अपनी जीविका का निर्वाह करती है।’ यही कारण है कि मुगल काल से यह देखा गया है कि ब्राह्मणों ने अपने परम्परागत पेशों के अतिरिक्त अन्य पेशों को भी चुनना शुरू कर दिया था। १०४० के कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने सेना में नौकरी और खेती का काम प्रारम्भ कर दिया था पर इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि कारोगर जातियों ने अपनी जाति के पेशों की रक्षा अधिक दृढ़ता से की है।

को०ए० पनिकर के अनुसार

“राजनीतिक दृष्टि के उपजाति के प्रति निष्ठा का भाव भी जातिवाद है।”

डा० नर्मदेश्वर के अनुसार

“जातिवाद, राजनीति में परिणत जाति के प्रति निष्ठा है।”¹³

आधुनिक काल में भारत में बौद्ध धर्म का पुनरुज्जीवन होने पर कुछ अस्पृश्यों द्वारा हिन्दू धर्म त्याग कर इसे अपना धर्म अपना गया। अक्टूबर १९५६ में अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण की और इनके साथ लगभग एक लाख महार जाति के लोगों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया किन्तु इन तथा कथित नवबौद्धों के लिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। इससे कोई विशेष सामाजिक परिवर्तन नहीं घटित हो सका। अपरंच, इसने सामाजिक गतिशीलता का एक कृत्रिम एवं ऊपर से आरोपित प्रक्रिया मात्र प्रस्तुत की जिसका हिन्दू धर्म एवं समाज की मुख्य धारा से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह एक प्रकार की पलायनवादी प्रवृत्ति से अभिभूत प्रक्रिया थी। धर्म परिवर्तन के सिद्धान्त का उद्देश्य हिन्दू समाज की परिशोधन न होकर इसके कुछ सदस्यों को इससे विलग कर इसे विघटित करना था। गांधी जी यहाँ एक ओर अस्पृश्यता के रोग को समाज से आमूल समाप्त करना चाहते थे। वहीं दूसरी ओर वे हिन्दू समाज की मूलभूत एकता को बनाये रखने के इच्छुक थे। उन्होंने अस्पृश्यों को धैर्य रखने और अपना धर्म न छोड़ने की सलाह दी। उन्होंने सर्वों से प्रार्थना की कि वे सदबुद्धि का प्रयोग करे और हिन्दू समाज के इस कलंक का दूर करने का प्रयास करें। वे नहीं चाहते हैं कि हिन्दू समाज का कोई वर्ग इससे कट जाये और न ही इस समस्या के निदान में वे सर्वों और अस्पृश्यों के बीच अन्तर्जातीय संघर्ष के रूप में एक दूसरी सामाजिक समस्या को पैदा होने देना चाहते थे। हमारे जातिवाद मानस का अहंकार देखते ही बनता है। जड़ और चेतन को ब्रह्म का हिस्सा मानने वाले लोग इंसान और इंसान के बीच भेदभाव करते हैं। भारतीय समाज अपने संकल्प और संघर्ष से यदि समता मूलक समाज नहीं बनायेगा तो विश्व बिरादरी में हमारा स्थान

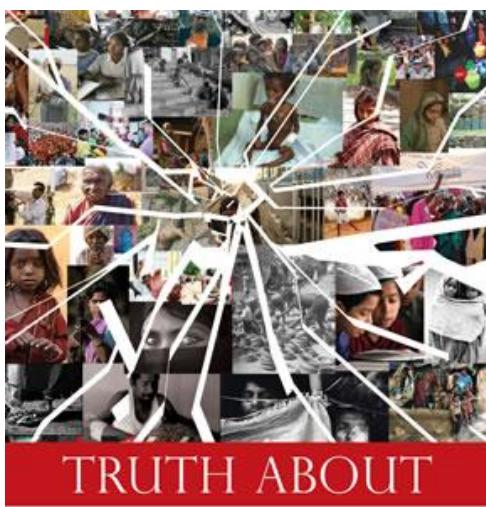
शूद्र का ही बना रहेगा । यू० एन० ओ० में 'वीटो' का अधिकार प्राप्त सर्वण है । शेष सब शूद्र । हमारे देश स तथा कथित ऊँची जाति का छात्र विशेष पढ़ने जाता है तो गोरों के होटल में झूठे बर्टन भी धो लेता है । अपना खर्च चलाने को और अपने ही देश में श्रम से भागने की हर सम्भव कोशिश करता है । नये हिन्दुस्तान में कमरों और लुटेरोंकी दो जातियां नहीं होंगी । नया हिन्दुस्तान पूरी दुनिया में जहां भी क्षमता के लिये, अन्याय के खिलाफ संघर्ष चल रहे हैं, उनसे जुड़ेगा, उनकी यथाशक्ति मदद करेगा ।

पुराणमित्येव न साधुसर्वभं
नवचानवद्यम्, नवमित्यवेहि
क्षणे—क्षणे यत्रवतामुपैति,
तदैव रूपम् रमणीययतायः ।

सभी पुरातन सही नहीं हैं, सभी नवीन सही नहीं हैं । पुरातन और नवीन के उत्तर तत्वों का समन्वय करके क्षण—क्षण में नवीन बनना और बनाना ही रमणीयता है ।¹⁴

यूँ तो यह कार्य आज के धर्मोचार्यों का है जैसे शंकराचार्य, संत आदि, परन्तु यदि वे किन्हीं कारणों से यह कार्य नहीं कर पा रहे हैं तो जागरूक जनता को यह स्वयं करना होगा । प्रज्ञा से धुन्ध हटानी ही होगी ।

जाति मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्तरण और खण्ड—विभाजन की वह गतिशील समस्या है जो खाने, पीने, विवाह और सामाजिक सहवासों के संबंधों में अनेक या कुछ प्रतिबन्धनों को अपने सदस्यों पर लाग करती है । जाति व्यवस्था एक गतिशील समस्या है पर लादे गए प्रतिबन्ध अथवा विभिन्न जातियों की सामाजिक आर धार्मिक निर्याग्यताएँ और विशेषाधिकार भी अन्तिम नहीं हैं । समय की गति के साथ—साथ इनमें भी परिवर्तन होता रहता है और हुआ भी है । उसो प्रकार धन प्रतिष्ठा या सत्ता, विशेषकर राजनीतिक सत्ता के आधार पर भी जाति के परंपरागत स्वरूप में बदलाव आ सकता है ।



TRUTH ABOUT DALITS

CASTE SYSTEM AND UNTOUCHABILITY

Oliver D'Souza

सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि जाति व्यवस्था समाज का खण्डात्मक विभाजन का ही नहीं अपितु एकीकृत ढांचे का भी काम करती है । यही कारण है कि आधुनिक भारत में जाति व्यवस्था अपनी परंपरागत प्रकारों का भले ही न करती हो पर अन्य अनेक नई भूमिकाओं को निभाती है । जाति—प्रथा निर्धारित विभिन्न खण्डों में ऊँच—नीच का एक संस्तरण या चढ़ाव—उतार होता है और इसमें, परंपराओं के अनुसार प्रत्येक जाति का स्थान जन्म पर आधारित होता है । इस संस्तरण में सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों की स्थिति होती है । इसके बाद क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का स्थान क्रमशः निम्न होता गया है । यह संस्तरण मुख्यतः कुछ स्थिर व दृढ़ है और इसी कारण साधारणतया इस संस्तरण में ऊँचे स्तर पर उठना असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य लगता है ।

छुआछूत के आधार पर विभिन्न जातियों को सामाजिक और धार्मिक योग्यता या विशेषाधिकार प्रदान करना ह । इस संबंध में सबसे अधिक विशेषाधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त है और सबसे अधिक निर्याग्यतायें अछूतों के लिए है । दक्षिण भारत में अछूतों की अवस्था वास्तव में दयनीय थी । वे उच्च जाति के लोगों को छना तो दूर उनको अपनी शवल भी नहीं दिखा सकते थे । द्रापलकोर, पूना आदि स्थानों में अनेक सड़कों पर अछूतों को चलने की आज्ञा न थी । उसी प्रकार उनको न तो मन्दिरा में प्रवेश का अधिकार था न स्कूल में पढ़ने का और न ही उन कुओं और तालाबों में पानी भरने का जिनको की उच्च जाति के लोग व्यवहार में लाते थे । गांवों में तो इस प्रकार के प्रतिबन्ध और भी कठोर होने थे और अछूतों को किसी भी प्रकार का सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं होता था । गांवों में अछूतों को बस्ती से बाहर रहना पड़ता था ।



निष्कर्ष

प्रायः प्रत्येक जाति कुछ पेशों का अपना परंपरागत पेशा मानती है और उसे छोड़ना उचित नहीं समझा जाता था । इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित के काम को और चमार जूते बनाने के काम को ही करना ठीक समझते हैं । साधारणतया ऐसा ही होता है और जाति—प्रथा का नियम भी यही है । साथ—ही—साथ केवल जातियों का ही नहीं बल्कि उनके द्वारा किए जाने वाले पेशों में भी ऊँच—नीच होती है । जिन पेशों में एक व्यक्ति को अपवित्र वस्तुओं के सम्पर्क में आना होता है, उन पेशों को नीचा माना जाता है । अपवित्र वस्तुओं में भी एक ऊँच—नीच का संस्तरण है । मल—मूत्र सबसे अधिक अपवित्र है । इसी प्रकार चमड़े का काम और गन्दे कपड़े धोने का काम दो पृथक श्रेणी के व्यक्तियों का होता है ।

इनके विपरीत धर्म से संबंधित समस्त कार्य पर पवित्र माने जाते हैं और यही कारण है कि इन कार्यों को करने वाले ब्राह्मणों की स्थिति जातीय संस्तरण में 'सर्वमान्य रूप में' सबसे ऊपर है। फिर भी कुछ ऐसे पेशे हैं जिन्हे प्रत्येक जाति के सदस्य चुन सकते हैं, जैसे-खेती, व्यापार, सना की नौकरी आदि, ने केवल जाति के व्यक्ति भी अपनी जाति के व्यक्तियों के अन्य पेशों को चुनने से रोकते हैं। अपितु अन्य जाति के व्यक्ति भी अनेक प्रकार से रोकने का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् पेशा संबंधी प्रतिबन्ध दिन-प्रतिदिन दर्बल ही होता गया और जैसा कि थेन्स का कथन है, 'जाति का पेशा परंपरागत होता है, परन्तु यह किसी भी अर्थ तो आवश्यक नहीं है कि उसी के द्वारा सब या अधिकतर जातियाँ आज अपनी जाविका का निर्वाह करती हैं। यही कारण है कि मुगल काल से यह देखा गया है कि ब्राह्मणों ने अपने परंपरागत पेशों के अतिरिक्त अन्य प्लॉ को भी चुनना शुरू कर दिया था। उत्तर प्रदेश के कान्यकुञ्ज ब्राह्मणों ने सेना में नौकरी और खेती का काम प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु इस सम्बंध में यह उल्लेखनीय है कि कारीगर जातियों ने अपनी जाति के पेशों की रक्षा अधिक दृढ़ता से की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आइनें में दलित, वाणी प्रकाशन, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, 29, राजपुर रोड, दिल्ली-110056, पृष्ठ सं0 88
2. अविशाई मार्गलिट, द डीसेंट सोसाइटी, हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, हावर्ड, 1996

3. केंद्र बालगोपाल, इंडियन जनरल ऑफ ह्यूमन राइट्स, जनवरी 1997, हैदराबाद विश्वविद्यालय, पृ0 100
4. उपरोक्त
5. जवीद आलम, "पब्लिक स्फैयर एंड डेमोक्रेटिक गवर्नेंस इन कटेंम्प्ररी इण्डिया" मल्टीकल्चरिज्म, लिबरलिज्म एंड डेमोक्रेसी, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली 1999, पृ0 324
6. कांचा एलेया, इंडियन जनरल ऑफ ह्यूमन राइट्स पूर्वोद्धृत, पृ0 151
7. पूर्वोद्धृत मार्गलिट, पृ0 31
8. उपरोक्त पृ0 36
9. दैनिक जागरण, 9 फरवरी 2016, पृष्ठ सं0 05, देहरादून संस्करण
10. डा० आलोक कुमार कश्यप, अनुसूचित जातियाँ एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम, आर्या पब्लिकशन, दिल्ली 110093, पृ0 256
11. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आइनें में दलित, वाणी प्रकाशन, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, 29, राजपुर रोड, दिल्ली-110056, पृष्ठ सं0 97
12. एमशंकर तिवारी, समाज का बदलता स्वरूप, सुमित एन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली 110002, पृष्ठ सं0 209
13. प्रतियोगिता दर्पण (अतिरिक्तांक)परीक्षोपयोगी सीरीज-22, नई दिल्ली ।
14. डा० अतुल कृष्णा, जाति प्रथा से पलायन, कल्पाज पब्लिकेशन, दिल्ली 110052, पृ0 179